IJAER/July- August- 2021/Volume-10/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

डॉ. इच्छारामद्विवेदी जी के साहित्य में मानवता के प्रति संदेश

विनीता राय
सह आचार्य (संस्कृत)
राजकीय कला महाविद्यालय कोटा
राजस्थान

कवि की लेखनी केवल रसनिष्पत्ति के लिये अलंकारों एवं छन्दों काप्रयोग करके आनन्द की सृष्टि ही नहीं करती अपितु उसमें कुछ सन्देश भी होता हैजिसके माध्यम से वह समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करता है। वह अपनी लेखनी से उन सभी बिन्दुओं को उकेरता है जो उसे मानवीय भावों के परिप्रेक्ष्य में दिखाई देते हैं। साहित्य समाज का दर्पण है इसमें कोई संशय नहीं है क्योंकि साहित्य के अनुशीलन से ही किसी काल विशेष के समाज, रीति रिवाज, शिक्षा, राजनीति, आार्थिक व धार्मिक पहलुओं का भली-भांति ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यद्यपि वह ज्ञान ऐतिहासिक शिलालेख, राजनीतिक दस्तावेजों व संविधान इत्यादि अन्य संसाधनों से भी प्राप्त हो सकता है किंतु उनमें सरसता नहीं होती तथा शुष्क विषयों में रुचि जाग्रत नहीं होती।महाकवि द्विवेदी जी के समस्त साहित्य में भी मानवीय संवेदनाओं का विशाल कोष हमें दिखाई देता है। उन सभी संवेदनाओं का औचित्य मानवता के प्रति संदेश देना ही है। मानव जाति में दया, प्रेम, दाक्षिण्य इत्यादि गुणों का विशेष महत्त्व है। मानवता के लिये सर्वप्रथम कल्याणकारी तत्त्व अथवा जिसे भाव कहा जाये तो वह है ईश्वर के प्रति आस्था। कवि ने प्रेम, भक्ति, दया, क्षमा, शिष्टता, विनम्रता, स्वाभिमान, धीरता, सहिष्णुता आदि विविध मानवीय गुणों एवं भावों कोअपनी रचनाओं में यत्र तत्र सर्वत्रव्यंजित किया है। जो इस बात को द्योतक है कि कवि की दृष्टि लोकमंगलकारी है और वे साहित्य के मानवीय सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध हैं।

डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी ने अपने समस्त काव्यों, गीतों, नाट्य व कथा साहित्य में मानवमूल्यों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। वर्तमान में समाज की स्थिति यह हो गयी है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए ही जीता है। उनकी सोच स्वहित तक ही सीमित होती है, अन्य व्यक्ति के हित से उसे कोई लेना देना नहीं होता। इससे यह स्पष्ट होता है कि शनैः शनैः मानवधर्म नष्ट होता जा रह है। स्वार्थान्ध इस लोक में मनुष्य ने निम्नताकी सभी हदें पार कर दी है। इन्द्रिय लोलुप आधुनिक मानव अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अपने कुटुम्बी जनों व मित्रों का अहित करने में जरा भी संकोच नहीं करता है।

कवि ने अपनी रचनाओं में संकेतों, अन्योक्तियों एवं दृष्टान्तों के माध्यम से समाजोपयोगी नवीन मूल्यों का निर्देश दिया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें वे एक अन्योक्ति के द्वारा कूप केमाध्यम सेये बताना चाहते हैं कि कूप की भाँति साधु भी स्वयं निरन्तर कष्ट पाकर भी समाज को निस्स्वार्थ भाव से कुछ न कुछ देना चाहता है-

कुद्दालैर्निशितैः पुनःपुनरपि प्रत्ते व्रणे यत्नतः
.....
हे कूप! व्रणितं त्वदीयहृदयं जानन्ति के वस्तुतः?[1]

अर्थात् हे बन्धु! पैनी कुदाली से बारम्बार यत्नपूर्वक तुम्हारे घाव किये गये हैं। फिर भी तुमने बड़े प्रेम से अमृत जैसा मीठा पानी ही लोगों को दिया। आज लोग यदि तुम्हारे मधुर जल को पीकर तुम्हारी प्रशंसा करते हैं तो क्या हुआ, हे कुएँ! तुम्हारे हृदय के घावों की कथा को कितने लोग जानते हैं। यहाँ मौन, त्याग एवं सहिष्णुताके भावों को दर्शाया गया हैं। साथ ही कवि यह सन्देश देना चाहते हैं कि हमें ऐसा ही होना चाहिये। यहाँ एक उदाहरण और देखिए जिसमें वे वापी के माध्यम से साधु पुरुषों को विपरीत परिस्थितियों में निराश न होने का संदेश देते हैं -

गुंजद्भृंगलसत्सरोजरुचिरं कल्लोलहास्यान्वितं

.....

काले हि प्रतिकूलतामुपगते केनानुभूतं सुखम् ।।[2]

समय के विपरीत होने पर इस संसार में किसने सुख प्राप्त किया है? अर्थात् किसी ने नहीं। अतः वापी केसूख जाने पर उसे उदास या निराश न होने का परामर्श देते हुये कवि उसके पुनः कमलवासिनी होने के लिये कह रहे हैं।महाकवि प्रणवसंत के साहित्य मेंमानवता के प्रति संदेश को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है -

1. सर्वजन सुखाय की भावना का संदेश –

महाकवि द्विवेदी के अनुसार संसार में सज्जनों को सदा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय के लिए ही प्रयास करना चाहिए। पृथ्वी पर एक ही व्यक्ति के हित में रत रहने वाले पुरुष को कीर्ति एवं प्रसिद्धि नहीं मिलती। इसके माध्यम से परोपकार की भावना पर बल देते हुए कहा है-

बहुहिताय सुखाय च सर्वदा, प्रयतनीयमिहास्ति हि सज्जनैः।
भवति भूतल एकहिते रतो, न पुरुषः प्रथितस्तु सुकीर्तिमान् ।।[3]

'प्रश्नचिह्नम्' संग्रह में 'नूतने वर्षे' नामक गीत में कवि ने नूतन वर्ष सभी के लिये मंगलदायी होवे ऐसी कामना की है-

शुभानामर्जने जायेत बुद्धिर्नैव संघर्षे
प्रभुं चित्तं सदा ध्यायेत बन्धो! नूतने वर्षे।
न दुःखानां लवस्पर्शोऽस्तु सर्वेषां कृते नित्यं
समेषामुन्नतिर्जायेत बन्धो! नूतने वर्षे ।।[4]

विश्वमंगल का संदेश हमें दूतप्रतिवचनम् में मेघ के द्वारा प्राप्त होता है जब मेघ उज्जयिनी नगरी में महाकाल के दर्शन करता है तो-

सर्वं विश्वं विपरिणमयंच्छङ्करः स्वीयशक्त्या,

.....

पूर्णीकुर्वन् सकलजनताकामनानल्पपात्रम् ।।[5]

अर्थात् उज्जयिनी नगरी में वह एकमात्र देव, प्रकट महिमाशाली, स्वयम्भू शंकर अपनी शक्ति से सारे संसार को संचालित करते हुये शिप्रानदी के शुभ जलकणों से स्नान कराये जाने पर प्रसन्न होकर अपने समस्त भक्तों की याचनाओं के विशाल पात्र को परिपूर्ण करते हुये निवास करते हैं। यहाँ कवि ने सभी की मनोकामनाओं के पूर्ण होने की बात कही है।

2. राष्ट्रीयता की भावना का संदेश -

राष्ट्रीयता की भावना के सम्बन्ध में कवि ने कई गीतिकाएँ एवं स्फुट काव्यों की रचना की हैजिनसे उनका देश के प्रतिअसीम प्रेम प्रकट होता है। 'गीतमन्दाकिनी' गीतसंग्रह में 'भारतीया भावना' नामक गीति में भारत के प्रति कवि की भावना अत्यन्त ही श्रेष्ठ एवं मन को मुग्ध करने वाली है। इसमें कवि ने भारत की प्रशंसा नहीं करके भारतीयों को सरल व अत्याचार तथा शोषण को सहने वाली भारतीय भावना के प्रति उलाहना दिया है अतः यह उपालम्भ है। एक प्रकार से भारतीय मानव को जाग्रत करने का संदेश है, जो सुधीपाठकों को सोचने पर विवश कर देता है -

विकलकरणा, शिथिलचरणा, भारतीया भावना
असुरदलिता, सुरविकलिता मानवीया चेतना
सरलजनशोषणचतुरता बुद्धिकौशलधारिणी
अपरनयनांजनकलामिह चातुरीभिर्हारिणी
हा वृकोदरपश्यतोहरवंशदुष्टा साधना

विकलकरणा, शिथिलचरणा भारतीयाभावना ।।[6]

कवि ने यहाँ भारतीयों की भावना पर अपनी व्यथा को प्रकट किया है। ऐसी ही एक अन्य गीतिका'भारतम्' है।उसमें अपने प्रिय राष्ट्र भारत के प्रति चिन्ता को ही व्यक्त करती हुई कवि की भावना उजागर हुई है। जिसमें कवि कह रहे हैं कि भारत की सम्पूर्ण विकास की गति शिथिल हो गयी है, उसके कारणों को बताते हुये कवि कहते हैं-

जनसंकुलं व्यथयाकुलं शिथिलायते मे भारतम्।
सुखभावितं सुरपावितं विमनायते मे भारतम्।।
.....
असदर्जनैः कलितर्जनैः कटुगर्जनैः सम्पीडिता,
अशिवाकुले घनकानने विकलायते मे भारतम् ।।[7]

इन दोनों ही गीतों में कवि ने भारत के प्रति चिन्ता को प्रकट किया है। पुनः 'बालगीतांजलिः' में 'राष्ट्रदेवते नमो नमः' में कवि ने स्पष्ट रूप से राष्ट्रदेवता को प्रणाम करते हुए बालकों में राष्ट्र-प्रेम का बीजारोपण किया है-

हे राष्ट्रदेवते! नमो नमः
हे राष्ट्रदेवते! नमो नमः।
अङ्के तव मोदयुता जनता
आसेतु हिमालयभूमिगता
वसतीह सुखेन सुकर्मरता।
करुणामयि मातः! नमो नमः
हे राष्ट्रदेवते! नमो नमः ।।[8]

इस पूरे गीत में कवि ने भारत की विशेषताओं का वर्णन करते हुये गंगा, कावेरी, सरस्वती, यमुना, शिप्रा आदि पवित्र नदियों का उल्लेख करते हुये भारत की पवित्र नदियों से बालकों का परिचय कराया है।

3. ईश्वर के प्रति आस्था का सन्देश –

महाकवि द्विवेदी ने 'हरिरेव जगत् जगदेव हरिः' कहते हुए ईश्वर के प्रति प्रबल आस्था को प्रकट किया है तथामानव समाज को संदेश दिया है कि पुण्यात्मा जनों को सदा हरि का ही ध्यान करना चाहिए, उन्हें जानना चाहिए तथा उन्हें ही पाने के लिए महान प्रयास करना चाहिए-

हरिरेव सदा ध्येयो, ज्ञेयः पूज्यः कृतात्मभिः।
तं प्राप्तुं जीवने नित्यं करणीयं महत्तपः ।।[9]

द्विवेदीजी ने कहा है कि हरि के स्मरण में रत नहीं होते हैं वे लोग विपत्तियों का अनुभव करते हैं इसके विपरीत प्रभु की शरण में अपनी बुद्धि लगाने वाले भक्त कभी दुःखी नहीं होते हैं-

अनुभवन्ति त एव विपच्चयं, य इह नैव हरि स्मरणे रताः।
शरणदे सुखदे च विभोः पदे, कृतमतिर्नहि देवि! विद्वयते ।।[10]

कवि ने सांसारिक व्यक्तियों के व्यवहार पर व्यंग्य किया है कि वे सबकुछ मिलने पर भी श्रीहरि के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं करते-

सुजनं सुधनं सुवैभवं, सुतनुंचापि निरामयीं भवे।
सकलं समवाप्य तावकं,स्मरणं नो कुरुते ह्यसज्जनः ।।[11]

जबकि किसी संसारी व्यक्ति से प्राप्त कण जैसी तुच्छ वस्तु के लिए भी देने वाले को धन्यवाद देते हैं -

कणिकां समवाप्य लौकिकाः, खलु दात्रे ददति स्ववन्दनम्।
निखिलं त्वधिगम्य जीवने, न कृतज्ञा हरयेऽधमाः जनाः ।।[12]

द्विवेदी जी ने ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रतिपादित किया गया है। साथ ही जो ईश्वर के प्रति कृतज्ञ नहींहैं उन्हें अधम बताया है-

निखिलं त्वधिगम्य जीवने, न कृतज्ञता हरयेऽधमाः जनाः ।।[13]

साथ ही कवि ने भगवान् श्री हरि से स्नेह करने की बात कहीं है, सांसारिक सम्बन्धों से स्नेह करने की नहीं, क्योंकि इनसे स्नेह करने पर तो केवल पीड़ा ही मिलती है-

किन्तु स्नेहः प्रकर्तव्यः, केवलं हरिणा समम्,
न च संसारसम्बन्धे, तत्र पीडैव केवलम् ।।[14]

4. गुरु-शिष्य सम्बन्धों की महत्ता का संदेश -

कवि प्रणव ने गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को यज्ञ एवं आहुति के समान बताते हुये कहा है कि दोनों परस्पर आश्रित होते हैं तथा लोक के लिए शुभकारी होते हैं-

गुरोः शिष्यस्य सम्बन्धः यज्ञाहुत्योरिव श्रुतः।
अन्योऽन्यं तौ श्रितौ लोके द्वावपीह शुभंकरौ ।।[15]

महाकवि द्विवेदी जी के अनुसार भारतीय संस्कृति में गुरु की महिमा का सदैव मण्डन किया गया है कि बिना गुरु की कृपा से मनुष्य की बुद्धि में कभी भी शान्ति नही आती-

मनुजः सुगुरोः कृपां विना, नहि शान्तिं लभते स्वमानसे ।।[16]

'सत्प्रेरणानाटकम्' में कवि नेप्राचीन शिक्षा पद्धति तथा भारतीय संस्कृति में प्रचलित गुरु परम्परा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए मानव जीवन व शिष्य के व्यक्तित्व के विकास में गुरु की भूमिका तथा गुरूपदेशों की महिमा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की हैं-

चिकित्सको वेत्ति नरस्य नाडीं,
दैवज्ञ एव च ललाटलेखाम्।
गुरुश्च जानाति समग्रवृत्तिं,
किमस्त्यविज्ञातमिति त्रयाणाम् ।।[17]

गुरु शिष्य के आत्मिक सम्बन्धों को भी प्रकट किया गया है कि शिष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर पूर्ण विश्वास के साथ कि गुरु उसकी समस्या का अवश्यमेव निवारण करेंगे इसलिए गुरु की शरण में जाता है। 'रविकृतम्' नामक अन्योक्ति में सूर्य के माध्यम से अपने शिष्यों के प्रति गुरु की हितकारी भावना का संदेश दिया है कि जैसे सूर्य तापमयी किरणें तो देता है लेकिन हरे भरे धान्य से परिपूर्ण खेत में अन्न के कणों में परिवर्तन ला देता है अर्थात् फसल को पका देता है। इसी प्रकार गुरु भी शिष्य को प्रताड़ित करता है लेकिन उसके अन्दर ज्ञान का प्रकाश भी भर देता है अर्थात् गुरु और सूर्य दोनों ही गुणों का विकास में सहायक होते हैं-

हरिताधान्यमयं नवशाद्वलं, प्रखरतापतयैव विशोषणैः।
अनिशमन्नकणे परिवर्तितं, रविकृतं विकृतं च कृतं शुभम् ।।[18]

5. अहंकार के प्रति सजगता का संदेश-

द्विवेदीजी ने अभिमान व अग्नि में सम्बन्ध बताते हुए मानवजाति को संदेश दिया है कि जिस प्रकार अग्नि के द्वारा क्षण भर में रूईके ढेर राख हो जाते हैं, उसी प्रकार अभिमान से जीव का नाश हो जाता हैअर्थात् अभिमान सदैव अप्रतिष्ठा ही देता है तथा समस्त पुण्य-समूह का नाश कर देता है -

सदाभिमानः कुरुतेऽप्रतिष्ठां, क्षिणोत्यसौ पुण्यचयं समग्रम्।
यथाग्निना तूलचयः क्षणेषु, विनाशमायाति तथैव जीवः ।।[19]

अन्योक्तिरत्नावली' में 'ऐरावतः' में ऐरावत का उदाहरण देते हुए समद व्यक्तियों की अपेक्षा तथा विनम्र मदहीन व्यक्ति को वरेण्य बताया है-

'लोके भवन्ति समदा न हि लोकवन्द्याः ।।[20]

6. सांसारिक द्वन्द्वों के प्रति सजगता का संदेश -

कवि ने जय-पराजय, शुभ-अशुभ, बल-निर्बल, शत्रु-मित्र, सुख-दुःख और निन्दा-स्तुति आदि सभी सांसारिक द्वन्द्वों से इस लोक में जो विजय प्राप्त कर लेता है वही सम्पूर्ण विश्वमन्दिर में शासन करता है

जयाजयौ शुभाशुभौ बलाबलौ परापरौ,
तथा च निन्दनस्तवौ समे भवन्ति कालतः।
क्रमेण जीवने सदैव चक्रयन्त्रिता गति,
र्विभाति लोकशासिका समग्रविश्वमन्दिरे ।।[21]

महाकवि ने संसार की द्वन्द्वात्मक परिस्थतियों के माध्यम से अवगत कराया है कि सूर्य एवं चन्द्रमा की गति प्रतिदिन होती है और वायु का यातायात प्रतिपल चल रहा है। फिर भी संसार में सुख-दुःख देने वाले हर्ष और शोक की विषम परिस्थितियाँ होती ही रहती हैं। आज मानव जाति विषम परिस्थितियों के कारण घोर नैराश्य एवं अवसाद में आकण्ठ डूबी हुई है। ऐसे में महाकवि की वाणी मानव जाति का प्राण संचार की दिशा में श्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदर्शन कर रही है-

अनुदिनं रविचन्द्रमसोर्गतिः, प्रतिपलं पवनस्य गतागतम्।
तदपि हर्षशुचोः विषमा स्थितिः,भवति लोकतले सुखदुःखदा ।।[22]

7. मानव के मनोविज्ञान के प्रति संदेश-

द्विवेदी जी ने सुख व दुःख के अनुभूतिके माध्यम से संदेश दिया है कि सुखी लोग संसार में सुखमय दिनों में सैकड़ों युगों के व्यतीत होने का अनुभव नहीं कर पाते, लेकिन दुःख के दिनों में क्षण भी युगों जैसे लम्बे प्रतीत होते हैं-

सुखकरे दिवसेऽननुभूयते, युगशतानि जनैः सुखिभिर्भवे।
विषमकष्टदिने प्रतिभासते क्षणमपीह युगेन समं सदा ।।[23]

द्विवेदी जी ने मित्रों के व्यवहार के माध्यम से सांसारिक जीवन के कटु सत्य का यथार्थ चित्रण किया है। इस संसार में यदि वैभव से युक्त समृद्ध जीवन है तो मित्रों से लम्बे समय तक सम्बन्ध बने रहते हैं अर्थात् उनमें व्यापकता आ जाती है लेकिन वहीं मित्रता विपत्ति के क्षणों में संकुचित होने लगती है-

विभवयुक्तसमृद्धसुजीवने, भुवि भवन्ति सुमित्रपरम्पराः।
परमहोऽत्र विपत्तिविकाशने, प्रलघुतापयान्ति च मित्रताः ।।[24]

प्रणवसंत इच्छारामजी ने परिस्थितियों के अनुरूप समायोजन करने के पश्चात् ही विधि-विधानपूर्वक कार्य करने पर बल दिया है। इस संसार में जो लोग बिना विचार किये ही कार्य करते हैं तो उनके विपत्तियाँ भी विशाल बनकर आती हैं -

त्वमवगच्छ समग्र परिस्थितिं, तदनु वत्स विधेहि विधानकम्।
इह जगत्यसमीक्ष्यकृतां कृते, विशदतामुपयन्ति विपत्तयः ।।[25]

8. दुर्जनों के मनोविज्ञान व दुर्व्यवहार के प्रति संदेश -

आज ऐसे दुर्जनों का यत्र-तत्र-सर्वत्र बोलबाला है जिन्हे मानव कहने पर भी लज्जा आती है क्योंकि उनके लिए दूसरे के दुःख व पीड़ा, उत्साह व उमंग का कारण बनते हैं। सुकवि द्विवेदी जी ने दुर्जनों का यथार्थ चित्रण करते हुए कहा है कि दूसरों का कष्ट ही जिनके लिए महोत्सव है ऐसे दुष्ट लोग संसार में सदा परिहास ही करते हैं। सरलचित्त वाले हितसाधक लोग पृथ्वीतल पर ज्यादा नहीं हैं-

जगति हासविधिं रचयन्त्यमी, खलजनाः परकष्टमहोत्सवाः।
सरलचित्तयुता हितसाधका, न बहु सन्ति भवे धरणीतले ।।[26]

प्रणवसंत ने 'वयम्' नामक अन्योक्ति के माध्यम से उन लोगों को उद्दण्डी कहा है जिन्होंने मोहरूपी विषमयी सुरा का बहुत पान किया है, मति को कीचड़ में जा पटका है, प्रभु की स्तुति कभी की नहीं अर्थात् सीताराम के चरणारविन्दयुगल में प्रेम भी नहीं किया मानो वे सद्बुद्धि को तो कुकर्मो के घर बेच आये हैं -

पीता मोहमयीसुरा विषमयी, नीता मतिः कर्दमे,
.....
.....
सीतारामपदाब्जयोर्न हि रतिर्लोकेऽविनीता वयम् ।।[27]

कवि ने 'एकादशी' कथासंग्रह की कुटिलतर्पणम् नामक कथा में असहाय मानव की विवशता का उपयोग कर किये जाने वाले कुकृत्यों का वर्णन किया है जिसमें अपने ही सहकर्मियों द्वारा योजनाबद्ध रूप से प्रताड़ित आशुलिपिक सुरेन्द्र आत्महत्या जैसा कुत्सित कृत्य करने पर विवश हो जाता है।

''परस्परमभिसन्धीय ते तस्योपरि मनोवैज्ञानिकरूपेणाक्रमणंचक्रुः।
शेखरेण दृष्टं यत्साम्प्रतं न कोऽपि सुरेन्द्रेण सहालपति।''[28]

सुरेन्द्र के सहकर्मी आपस में वार्ता करके मनोवैज्ञानिक रूप से उस पर आक्रमण करते थे और उसका मनोबल गिराते थे।''**यदि किंचित् कार्यं करोति तदा तत्र दोषदर्शनं विधाय तं तथाप्रकमारेण भर्त्सयन्ति स्म येन स परमग्लानितया अधिकाधिकं क्षुभ्यति स्म।**''वह जो भी कार्यकरता था, उसमें दोष निकालकर उसकी भर्त्सना करते थे जिससे उसको बहुत ग्लानि होती थी और वह और अधिक क्षुब्ध हो जाता था। यही नहीं उसको कार्यालय से निकलवाने की योजना बनाकर अर्द्धवेतन पर कार्य करने का प्रस्ताव रखते हैं-

''यदि वर्मा वेतनस्यार्द्धंभागं प्रतिमासं दद्यात्-तर्हि तस्य निष्कासनं न भविष्यति। त्वं तु जानास्येव-सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः''।

फलस्वरूप रेलयान के आगे वह अपनी इहलीला समाप्त कर लेता है। कथाकार ने इस कथा के माध्यम से उन कुटिल व्यक्तियों से परिचय कराया है जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए सरल स्वभाव के व्यक्ति का शोषण करने के लिए किस हद तक गिर जाते हैं। बाद में वे ही कुटिल सहकर्मी उसकी आत्मा की शांति के लिए तर्पण करते हैंतथा यह संदेश दिया है किआधुनिक समाज में एक असहाय व्यक्ति हर प्रकार से अपनी स्वयं की नजरों में गिरता जाता है और दुष्ट प्रवृत्ति के लोग उसकी विवशता का उपयोग करके कुकृत्य करते हैं।

9. व्रत, उपवासों के महत्त्व का संदेश-

प्रणवसंत ने पयोव्रत का उपदेश दिया है कि यह हरिकृपा देने वाला मंगलमय व उत्तम सुखों को देने वाला है इसलिए इसका पालन करों-

'चर पयोव्रतमुत्तमसौख्यदं, स च दयालुरिहास्ति सदा गतिः।।[29]

महाकवि इच्छाराम जी ने फाल्गुन मास में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को फलप्रद व्रत की शुरूआत हेतु अत्यधिक शुभ मूहुर्त माना -

सुतनु मासि शुभेऽत्र सुफाल्गुने, सितसुपक्षगता प्रतिपत्तिथिः।
भवति चास्य व्रतस्य कृते शुचिः, व्रतमिदं चर देवि! फलप्रदम् ।।[30]

प्रणवसंत ने व्रतपूर्ण करने वाली विधि का उपदेश दिया कि प्रतिदिन भास्कर संख्या अर्थात् द्वादशाक्षर मंत्र 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' के सुखकारी श्रीहरि मंत्र का जाप करो और बछड़े के साथ दूध देने वाली गौ माता की पूजा करो। श्रीहरि के पूजन के बाद गो-दुग्ध का ही पान करो। इस व्रत से प्रसन्न होकर प्रभु तुम्हारे घर में जन्म लेकर निश्चय ही देवकुल के वैभव को पुनः युक्त करेंगे-

अनुदिनं जप मन्त्रणिं हरेः, सुखकरं खलु भास्करवर्णकम्।

शिशुयुतांच समर्च्य पयस्विनीं, पिबं पयो हरिपूजनपूर्वकम् ।।[31]

10. आत्मनिरीक्षण एवं आत्मपरिष्कार के लिए संदेश-

'अयमहं भो कीदृशा भवन्तः' नामक कथा में कवि ने पाठकों को दिन-प्रतिदिन की घटनाओं के माध्यम से आत्मनिरीक्षण एवं आत्मपरिष्कार के लिए प्रेरित किया है। अयमहं भो! भवन्तः कीदृशाः' के माध्यम से द्विवेदी जी ने आधुनिक मानव की मशीनी दिनचर्या को दर्शाते हुए अनेक प्रसंगों के माध्यम से मनुष्यों की संवेदनहीनता, दुश्चरित्र, पल-पल बदलती मनोवृत्तियों को प्रदर्शित करते हुए आत्ममंथन करने के लिए प्रेरित किया है।

''न जाने का विपत्ति स्यात्? कदाचित कदापि न्यायालयादिके समाहरणं मे भवेदिति अच्छं श्रीमन्! प्रथमन्तावदपरेषां हस्ताक्षराणि गृह्णन्तु भवन्त ततोऽहमपि करिष्यामि। यावल्लघुशंकां निर्वापयित्वा।'' अयमहंभो! भवन्तः कीदृशाः![32]

दुर्घटना में मृत छात्र के वृत्तान्त का साक्षी बनने के लिये कोई भी तैयार नहीं होता और सभी कोई न कोई बहाना बनाते हैं।

'मूकता' अन्योक्ति में द्विवेदीजी ने मूर्खता की निंदा करते हुए कहा है कि हे मित्र! जो सत्य के लिये मुखर नहीं होती, झूठ को नहीं धिक्कारती, प्रशस्ति तथा गुण के लिए प्रखर नहीं होती और पाप से जुगुप्सा नहीं करती, उचित बात को कहने को चंचल नहीं होती और सदा स्वार्थ से आकुल रहती है, उसकी मनुष्यता तो गधे के समान ही है एवं उसकी मूकता ही मूर्खता है-

सत्ये नो मुखरायते यदि सखे! धिक्कुर्वते नो मृषां,
.....
.....
मानुष्यं तु खरायते, नरपशोः सा मूकता मूर्खता।।[33]

11. मानवधर्म की स्थापना का संदेश-

कवि ने मानव को एक मानव होने की यथार्थता पर बल दिया है क्योंकि आज वह अपनी मान-मर्यादा को भूल चुका है। समाज में आये दिन हत्या, लूटपाट, रिश्वतखोरी जैसे अपराधों का प्रभाव बढ़ रहा है और जिस प्रकार समाज में अपराधों की संख्या बढ़ रही हैं, उतनी ही मानवता खत्म होती जा रही है। अतएव हमारा दृष्टिकोण हमेशा ईमानदारी व प्रगतिशील ही होना चाहिए ताकि समाज में बदलाव लाना स्वतः ही सरल व सुगम बन जाए। कवि ने पाश्चात्य संस्कृति का त्याग करने भारतीय संस्कृति के प्रति मानवीय संवेदनाएँ व्यक्त की है।

महाकवि ने समस्त लोकों में मानव धर्म की वृद्धि को अपना निश्चय बताया है। इसके फलस्वरूप लोग भय से विमुक्त होकर विचरण करें और सज्जनों के चित्त प्रसन्न हो जायें -

समस्तलोकेषु महान्हि धर्मः, प्रवर्द्धितः स्यादिति मे प्रकल्पः।
चरन्तु सर्वेऽपि भयाद् विमुक्ताः, हृष्यन्तु चेतांसि च सज्जनानाम् ।।[34]

आज के नौकरी पेशा व्यक्तियों की मनोदशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए सहृदय पाठकों की चेतना को झकझोरा है। कार्यालयों के दूषित व दमघोंटूसामाजिक पर्यावरण से दुष्टों के उन पाठकों को अवगत कराया है-

सर्वे सहकार्मिका अधुनाऽपि कार्यालयाङ्गणे समवेता आसन् परमधुना तेषामाननेषु दुःखरेखापि न दृश्यतेस्म। .....समाजे प्रातिकूल्यं वीक्ष्य जनो गृहे सहधर्मचारिण्या सह वार्तया दुःखापनयनं करोति, गृहे च कष्टमवाप्य मित्रमण्डलीषु दुःखावेदनेन क्षोभमपनुदति किन्तुयदि कोऽप्युभयतोऽवहेलनं प्राप्नोतितदाऽवश्यमेव तस्य मानसिकं वैकल्यं भवत्येवेति सामान्यो नियमः।[35]

2. परस्पर सौहार्द का संदेश-

द्विवेदीजी ने स्नेह से युक्त व्यक्ति की प्रंशसा करते हुए कहा है कि तरलता, प्रकाश व भक्ति इत्यादि स्नेह से ही आते हैं अर्थात् स्नेह करने वाला व्यक्ति सब कुछ पा लेता है-

स्नेहेनैव हि तारल्यं, स्नेहेनैव हि दीपनम्,
स्नेहेनैव च सद्भक्तिः स्नेहवाँल्लभतेऽखिलम्।।[36]

एवंबालगीतांजलि के 'गृहमेव सखे' गीत में कवि ने बालकों कोविश्वबंधुत्व की भावना के साथ परस्पर प्रेम की शिक्षा दी है जोद्रष्टव्य है -

यदि मानवता हृदये निहिता निखिला धरणी गृहमेव सखे! ।।[37]

अर्थात् यदिहृदयमें मानवता का भाव है तो यह सम्पूर्ण वसुधा ही अपने घर के समान है।

13. दाम्पत्यधर्म के निर्वाह हेतु स्त्रीधर्म का संदेश-

महाकवि इच्छारामजी ने स्त्री के शाश्वत धर्म के बारे में बताया है कि जिससे पति का उत्कर्ष होता हो व जिससे वंश की कीर्ति हो, वही स्त्री का शाश्वत धर्म है। धर्मपत्नी पति के शरीर का आधा भाग होती है अतएव उसे समस्त धर्माचरण में पति की सहायता करनी चाहिये-

यत्र पत्युः समुत्कर्षः, येन वा कुलकीर्तयः।
.....
.....
अतो धर्मे तया कार्यं, साहाय्यं पत्युरेव हि ।।[38]

महाकवि ने 'एकादशी' संस्कृतकथागुच्छ के 'दुश्चक्रम्' व 'पश्चात्तापः' शीर्षक कथाओं में दाम्पत्यधर्म के निर्वाह हेतु पत्नी के द्वारा अपने पति के प्रति पूर्णसहयोग को चित्रित करते हुए मानवता को संदेश दिया है।

'एकादशी' की 'पश्चातापः' नामक कहानी मेंन्यायाधीशमहोदय के किंकर्तव्यविमूढ होने पर उनकी पत्नी एक मित्र के समान युक्तियुक्त सलाह देकर उन्हें विकट स्थिति से उबरने में सहायताकरती है जो कि दर्शनीय है- **''अस्मादेव निर्णयात् क्षुब्धो न्यायाधीशो रात्रौ गृहवाटिकायां परिभ्रमति।..... मृदुला तत्रागत्य सर्वं वृतान्तं श्रुत्वाऽकथयत् ''अत्र यदि दण्डविधानं नोचितं भवान् मन्यते तर्हि त्यागपत्रं दत्वा उच्च न्यायालयेऽधिवक्तृरूपेणादित्यस्य''**[39]इस प्रकार न्यायाधीश की पत्नी ने अपने पति की समस्या के समाधान हेतु न्यायाधीश के पद से त्यागपत्र देकर अधिवक्ता के रूप में अभियुक्त पक्ष पर लगाये गये आरोपों को मिथ्या प्रमाणित करने का उचित परामर्श दिया।

'दुश्चक्रम्' मेंसुधाकर अपनी धर्मपत्नी से कहता है कि जब भी विषम परिस्थिति आती है तो उसकी प्रथम साथी पत्नी ही होती है और जब सुधाकर राजनीति के 'दुश्चक्रम्' में फंस कर परेशान हो जाता है तब उसकी पत्नी ही सर्वप्रथम उसका साथ देती है-

गृहे निर्विण्णवदनोऽतिचिन्तितः सुधाकरो यदा प्राविशत्तदा लक्ष्मी
..... भुजं गृहीत्वा गृहाभ्यन्तरं तं नीतवती।[40]

इसप्रकारकवि ने समस्त धार्मिक आचरणों में पति की सहायता करने को स्त्री का शाश्वत धर्म बताया है। वहींउन्होंने महिलाओं के साथ हो रहे दुश्शील आचरण से निपटने के लिए अत्यधिक पीड़ा व्यक्त की हैं। लैंगिक असमानता की प्रकृति व कारणों को समझने तथा इसके फलस्वरूप पैदा होने वाले लैंगिक भेदभाव की राजनीति व शक्ति संतुलन हेतु नारीवादी तथ्यों से अवगत कराया है। कवि ने समाज में व्याप्त दहेज रूपी अभिशाप के प्रति व्यंग्य करते हुए महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास किया है।

14. सदाचरण का संदेश

'नैव करणीयः' में महाकवि प्रणवसंत ने जीवनमूल्यों की शिक्षा व नैतिक शिक्षा का वर्णन करते हुए जीवन के कटु सत्य से अवगत कराया है-

सदा भूत्यै समुन्नत्यै
.....
स्वविद्याभ्यासकालेऽपि

प्रमादो नैव करणीयः।
सुखं दुःखं क्रमेणायाति
यातीत्थं जगच्चक्रम् ।।[41]

कवि राष्ट्र के प्रति अत्यन्त ही चिन्तित है, भारत भूमि का जो भाग पीड़ित है मानो कवि की देह का भी कोई अंग विकलता की पीड़ा को भोग रहा है- 'प्रमेयं त्वया' में कवि ने ऐसे ही कश्मीर की भूमि का दुःख दिखाया है -

केशरं चन्दनैर्यत्र संमिश्रितं वीरभालेषु नित्यं हि बिन्द्रूयते।
सैव काश्मीरभूः निस्त्रपैर्हिंसकैःदीर्घकालादहो अन्त दोद्रूयते।।
रक्षणायैव कर्माद्य चेयं त्वया
दुर्मुखानां विधानं प्रेमयं त्वया ।।[42]

ऐसे ही अन्यान्य अनेक सन्देश भी कवि ने लिखे हैं जिनमें भारत की दुःस्थिति का वर्णन करते हुये अत्यधिक दुःख प्रकट किया है। 'व्यथा' भी ऐसी ही एक गीतिका है। 'प्रश्नचिह्नम्' नामक गज़ल-संकलन में भी इसी प्रकार भारत की दुर्दशा पर पीड़ाअभिव्यक्त की है। 'नो भारतेगणतन्त्रता' में कवि ने लोकतन्त्र की दुरावस्था पर दुःख व्यक्त किया है-

स्वच्छन्दतैषा प्रत्यहं नृत्यत्यहो! अनियन्त्रिता
.....
धर्मान्धता, स्वार्थान्धता जात्यन्धतैव निमन्त्रिता ।।[43]

इसमें भारत की गणतन्त्रात्मक व्यवस्था में जो दोष उत्पन्न हुये हैं, उन्हें दर्शाया है। जिसमें धर्मान्धता, स्वार्थान्धता, जातिवाद आदि समस्याओं को बताते हुये कहा है कि इन दोषों के कारण हमारे गणतन्त्र पर आघात हो रहा है।

'प्रणवपंचविंशति' नामक गीतिकाव्य संग्रह में कवि ने 'भारत-वसुन्धरा' नाम से जो गीत रचा है, उसमें कवि ने भारत भूमि को पवित्र भूमि बताते हुये इसे कलिमलनाशिनी कहा है। ऐसी भारत भूमि की सदा ही जय होवे-

जनहितकरणी भवनिधितरणी संस्कृतिपरम्परा
.....
त्रिभुवनकमनी जगति विजयते भारत-वसुन्धरा ।।[44]

15. **अतीत के गौरव के गुणगान का संदेश**-

'संस्कृत-द्वादशी' में द्विवेदीजी ने प्राचीन गौरवपूर्ण विशेषताओं तथा वर्तमान कालिक भारतीय संस्कृति के अवपतन के बारे में स्थितियों का तुलनात्मक वर्णन किया है। इसमें मालिनी छन्द में निबद्ध बारह पद्य है। पद्य के पूर्वार्ध में प्राचीन संस्कृति का तथा उत्तरार्ध में अवपतन से युक्त वर्तमान संस्कृति का वर्णन किया गया है। वर्तमान में शासकीय व्यवस्था भी सो रही है अर्थात् भारत का अस्तित्व खतरे में है-

विमलनिगमधाराक्षालिता या पुराणी ऋषिकलुकरकजैः पालिता रम्यरूपा ।
.....
अहह विषमकाले भारते साम्प्रतं मे विलयपथमुपैति त्रस्तगात्री वराकी ।।[45]

हम में से कई जन अपने पूर्व के गौरव को भूल गये हैं, उस पर शोक व्यक्त करते हुये कहा है-

सखे! किं कृतम्? बलं विस्मृतम्
सखे! किं कृतम्? बलं विस्मृतम्
रामराज्यविस्तारकुशलता धर्मनीतिविस्तारसफलता।
दैत्यवंशविध्वंसकुलिशतः, स्वर्णदुर्गदाहषुचपलता।[46]

16. **भ्रष्टाचार के निर्मूलन का संदेश**-

प्रणवसंत द्विवेदी अपनी उपाधि के अनुरूप संतकार्य का निर्वाह करते हुए समाज में व्याप्त बुराईयों को निर्मूल समाप्त करने के लिए अपनी रचनाओं के माध्यम से निरन्तर प्रयत्नशील रहे । उनकी प्रायः सभी रचनाएँ किसी न किसी सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक समस्या के उन्मूलन हेतु सहृदय के हृदय को उद्वेलित करती हैं। साथ ही तत्तत् समस्या के समाधान के लिए युक्तियुक्त उपाय भी सुझाती हैं। भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करते हुये उसे विषवृक्ष की संज्ञा दी है तथा कहा है कि इस विष वृक्ष को तत्काल ही नष्ट कर देना चाहिये-

उप्तं कुक्षितले त्वया विषतरोर्बीजं स्वमौर्ख्यादिदं

.....

देशे शान्तिविनाशकस्य कुतरोः संसेचनं मा कृथाः।।[47]

'हा....हा' लघुकथासंग्रह की ''तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'' नामक लघुकथा में कवि द्वारा सरकारी योजनाओं के अन्तर्गत ऋण लेने पर सरकारी अधिकारियों के भ्रष्ट व्यवहार के प्रति दुःख प्रकट करते हुए व्यंग्य किया हैएवं पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।इसीप्रकार ''उद्धारः'' लघुकथा में महाकवि द्विवेदी जी ने राजनेता के परिवार द्वारा किये गये भ्रष्ट आचरण का वर्णन किया गया है।

17.**युवाओं के कर्त्तव्याकर्त्तव्यों का संदेश** –

प्रणवसंत ने 'सत्प्रेरणा' नाटक में बेरोजगार युवाओं को व्यर्थ के प्रेमालाप को छोड़कर राष्ट्र के विकास हेतु कार्य करने के लिए प्रेरित किया है,द्रष्टव्यहै -

जाते! स्वजीवने भक्त्या श्रीकृष्णमुपधाव। वत्स! त्वमपि सावहितो भूत्वा शारदाराधनं कुरु । अस्मिन् कल्पे कृता युवयोर्भक्तिः आगामिनि कल्पे युवयोरखण्डं सम्मिलनं विधास्यति । अस्मिन् जीवने तु लोककल्याणार्थमेव युवयोः प्रेमांकुरः फलितः ।[48]

इतना ही नहीं, कवि ने युवाओं से मानवता को उन नैतिक जड़ों तक वापस ले जाने की अपेक्षा की हैं जहाँ से अनुशासन और स्वतंत्रता दोनों का उद्गम हो। मानव जीवन के स्वर्णिम काल, युवावस्था को दृष्टिगत रखते हुए कवि ने इस महत्त्वपूर्ण नाटक की रचना की हैं तथा भारतीय संस्कृति के आत्मभूत गुरु-शिष्य सम्बन्धों पर अपनी अमर लेखनी केद्वारा विद्यार्थियों एवं युवाओं का पथ-प्रदर्शन किया है। युवावस्था में आने वाली विभिन्न चुनौतियों एवं समस्याओं का निर्भीक होकर सामना करने तथा गुरु के निर्देशन में तत्तत् समस्याओं का निवारण एवं उचित समाधान हेतु सन्मार्ग दिखाया है।

निष्कर्ष –

इस प्रकारडॉ.द्विवेदी जी का साहित्य कई सन्दर्भों में विवेचित है। इनके द्वारा गद्यकाव्य, गज़ल गीतिकाएँ, खण्डकाव्य, महाकाव्य, अन्योक्तियाँ आदि सभी रचनाओं में मानवता के प्रति सन्देश प्रधान भाव रहा है। अपने पद्यकाव्यों में तथा कथासाहित्य में लेखक ने प्राचीन मूल्यों की पुनर्स्थापना, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नवीन मूल्यों की स्थापना, समाज की नाना समस्याओं, विविधविकृतियों आदि पर कटाक्ष के माध्यम से जाग्रति उत्पन्न करना आदि आदि पहलुओं पर पाठकों का विशेष ध्यानाकर्षण किया हैतथा इन सभी का विश्लेषण द्विवेदीजी के साहित्य में प्रचुर मात्रा मेंउपलब्ध है।

इनमें कवि ने मानवीय संवेदनाओं एवं आधुनिक जीवन के आधार पर नवीन सामाजिक,नैतिक, राजनैतिक, आर्थिक व धार्मिक मूल्यों आदि का उत्कृष्ट प्रवचन किया है। स्वयं भागवत कथावाचक होने के कारण उनका जीवन समाज में मूल्यों के प्रति सदैव ही जागरूक रहा है। कवि के विनम्र भाव उनकी सभी आध्यात्मिक कृतियों में झलकते हैं जहाँ उन्होंने ईश्वर प्रणिधान पर विशेष बल दिया है वहीं समाज की अव्यवस्थाओं के प्रति प्रचण्ड आक्रोश भी प्रकट किया है।वही मानवीय संवेदना इनके सम्पूर्ण साहित्य में दिखाई देता है। चाहे काव्य की सुषमा हो या कथासाहित्य का संसार सभी स्थानों पर कवि ने मानवीय भावनाओं को सम्मान दिया है।

अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी की प्रायः सभी कृतियों में आधुनिक समसामयिक ज्वलन्त समस्याओं का युक्तियुक्त विमर्श प्राप्त होता है जो कि प्रसाद गुण से युक्त एवं अत्यधिक स्वभाविक होते हुए भी ग्राम्य दोष से रहित एवं अतिशयोक्ति शून्य है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1 अन्योक्तिरत्नावली, कूप!,प्र.र., पृ.सं. 479
2 अन्योक्तिरत्नावली, वापी, प्र.र., पृ.सं. 479
3 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं.191, पद्य सं. 24
4 प्रश्नचिह्नम्, नूतने वर्षे, प्र.र., पृ.सं. 438, पद्य सं. 5 एवं 6
5 दूतप्रतिवचनम्, प्र.र., पृ.सं. 48, पद्य सं. 56
6 गीतमन्दाकिनी, भारतीयाभावना, पृ.सं. 486, पद्य सं. 1, 2 एवं 3
7 गीतमन्दाकिनी, भारतम्, प्र.र., पृ.सं. 284, पद्य सं. 1 एवं 2
8 बालगीतांजलि, राष्ट्रदेवते! नमो नमः, प्र.र., पृ.सं. 362, पद्य सं. 1, 2 एवं 3
9 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 105, पद्य सं. 37
10 दूतप्रतिवचनम्, प्र.र., पृ.सं. 51, पद्य सं. 62
11 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 131, पद्य सं. 21
12 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 210, पद्य सं. 6
13 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 210, पद्य सं.7
14 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 210, पद्य सं.7
15 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 105, पद्य सं. 40
16 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 210, पद्य सं. 9
17 सत्प्रेरणानाटकम्, चतुर्थ अंक, पद्य सं. 7 पृ. सं. 30
18 अन्योक्तिरत्नावली, रविकृतम्, प्र.र., पृ.सं. 483, पद्य सं. 33
19 …
20 अन्योक्तिरत्नावली, ऐरावतः, प्र.र., पृ.सं. 488, पद्य सं. 46
21 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 124, पद्य सं. 21
22 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 126, पद्य सं. 1
23 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 126, पद्य सं. 2
24 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 126, पद्य सं. 3
25 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 187, पद्य सं. 8
26 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 127, पद्य सं. 4
27 अन्योक्तिरत्नावली, वयम्, प्र.र., पृ.सं. 482, पद्यसं. 29
28 एकादशी, कुटिलतर्पणम्, पृ.सं. 47
29 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 131, पद्य सं. 24
30 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 132, पद्य सं. 28
31 वामनचरितम्, प्र.र., पृ.सं. 132, पद्य सं. 29
32 एकादशी, अयमहं भो कीदृशा भवन्तः, पृ.सं. 37
33 अन्योक्तिरत्नावली, मूकता, प्र.र., पृ.सं. 478,
34 वामनचरितम्, सर्गः 8, पद्य सं. 25, पृ.सं. 166
35 एकादशी, कुटिलतर्पणम्, पृ.सं. 47
36 वामनचरितम्, सर्गः 15, पद्य सं. 3, पृ.सं. 228
37 बालगीतांजलि, गृहमेव सखे, पद्य सं.1, प्र.र., पृ.सं. 364

38 वामनचरितम्, सर्गः15, पद्य सं. 9-10, पृ.सं. 229
39 एकादशी, पश्चातापः, पृ.सं.9
40 एकादशी, दुश्चक्रम्, पृ.सं.15
41 बालगीतांजलि, नैव करणीयः, पृ.सं. 364
42 समुज्ज्वला, प्रमेयं त्वया, पृ.सं.404
43 प्रश्नचिह्नम्, नो भारतेगणतन्त्रता, पृ.सं.437
44 प्रणवपंचविंशति, भारत-वसुन्धरा, पृ. 446
45 गीतमन्दाकिनी, संस्कृत-द्वादशी, पृ.सं. 264
46 प्रणवरचनावली, अन्योक्तिरत्नावली, पृ.सं. 478
47 प्रणवरचनावली, गीतमन्दाकिनी, सखे किं कृतम्, पृ.सं. 283
48 सत्प्रेरणानाटकम्, पंचम अंक, पृ. सं. 46